कवि हरिराजकृत प्राकृत मलयसुंदरीचरियं

Prakrit Malayasundaricariyam of Kavi Hariraj

डा० प्रेम सुमन जैन

मध्ययुगीन प्राकृत कथासाहित्य में से जो रचनाएं अब तक अप्रकाशित एवं अप्रसिद्ध हैं उनमें मलयसुन्दरीचरियं भी है। इस प्राकृत कथाग्रन्थ की तीन पाण्डुलिपियों का परिचय हमने पहले प्रस्तुत किया था।[1] इसका सम्पादन-कार्य करते समय भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना में हमने जो मलयसुंदरीचरियं की पाण्डुलिपि देखी है, उसका परिचय यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। इस पाण्डुलिपि का उल्लेख डॉ० एच० डी० वेलणकर ने किया है[2] एवं एच० आर० कापडिया ने भी इसको अपनी ग्रन्थसूची में स्थान दिया है।[3] किन्तु अन्य ग्रन्थभण्डारों एवं उनकी प्रकाशित ग्रन्थ सूचियों में कवि हरिराजकृत इस मलयसुंदरीचरियं की दूसरी प्रति होने की कोई सूचना प्राप्त नहीं है।

अद्यावधि मलयसुंदरीचरियं से सम्बन्धित संस्कृत, हिन्दी, गुजराती एवं जर्मन भाषा के जो अनुवादादि युक्त संस्करण प्रकाशित हुए हैं, उनकी चर्चा हमने अपने पूर्व लेख में कर दी है। गतवर्ष भी इस कथा से सम्बद्ध दो हिन्दी कृतियाँ सामने आयी हैं।[4] इन सभी कृतियों में इस मूल प्राकृत रचना को अज्ञातकर्तृक ही माना गया है। एकमात्र पूना की इस प्रति में ही रचनाकार के रूप में कवि हरिराज की प्रशस्ति प्राप्त होती है। अतः इस विषय में अनुसन्धान आवश्यक प्रतीत होता है। कवि एवं इस पाण्डुलिपि के सम्बन्ध में अन्य विवरण देने के पूर्व इस प्रति का आदि एवं अन्तिम अंश यहाँ उद्धृत है—

मलयसुंदरीचरियं (प्राकृत)

[हरिराज, सं० १६२८]

पूनाप्रति (१४०४)

---

१. जैन, प्रेम सुमन, 'मलयसुन्दरीचरियं की प्राकृत पाण्डुलिपियां' नामक लेख, वैशाली इन्स्टीट्यूट रिसर्च बुलेटिन नं० ४ (१९८४) में प्रकाशित, पृ० ४९-५२

२. वेलणकर, एच० डी०, जिनरत्नकोश (१९४४), पूना, पृ० ३०२ एवं ३०५

३. कापडिया, एच० आर०; डिस्क्रिप्टिव कैटलाग ऑफ मेनुस्क्रिप्ट्स, भाग १९, सेक्शन I, पार्ट II (१९७७), संख्या—१४०४

४. (i) धामी, मोहनलाल सी०; 'महाबल मलयासुन्दरी', अनु—मुनि दुलहराज, चूरु, १९८५
(ii) जैन रोशनलाल, मलयसुन्दरी, जयपुर (१९८७)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रारम्भिक अंश :—

।। श्री वीतरागाय नमः ।।

पणय-पयकमल सुरयण-किंनर-नरविंद नह खयर……।
… … … …पडिय, णमो णमो तुज्झ जिणइसा ।। १ ।।
धवलं वरसोहयरे वीणाकर जासु पुत्थिया हत्थे।
गायंती महुरं… … … … … … …सरसइ मज्झु ।। २ ।।
वीरस्स पढमगणहरु पयडो दायार-लद्धि सिद्धीए।
सो गोयमु समरंतो अप्पउ कल्याणं सुहकव्वे ।। ३ ।।
वुहिपणयण-पयकमलं पणमउ हरसेण पुव्वसुरीणं।
मुढइह इय सव्वं पसाउ जिणभत्ति कयसत्ति ।। ४ ।।
पाइय वंधे कव्वे पुव्वकयं सोइऊण अमीयं सगं।
तो मह परिसइच्छाउ पत्तिअ कव्व-आरंभे ।। ५ ।।
धम्म अपकित्ति-हरणं धम्मं उक्किट्ठ-मंगलं भणियं।
संसार-सारधम्मं, धम्मं धुअ-सिवपहे सत्थं ।। ६ ।।
चउविहधम्माभणिउ जिणदेवेहिं चउम्महे पयडो।
दाणवहोरो तह सीलं तव भावेण नामए अमलं ।। ७ ।।
नाणं दंसण-चरणं रयणत्तयं जीववोहयं हवइ।
तह कहियं पि हु सम्मं नाणपहाणं विक्खइहिं ।। ८ ।।
लोयण तइयं नाणं नाणं दीवंत मोह-रसयलं।
नाणं तिहुयणसूरं नाणं अप्पाणं मल-दहणं ।। ९ ।।
नाणं धरइ सम्मं जीवं पडियं महापया मज्झे।
जह सई य मलयसुंदरि वोहए गोसिलो गव्वे ।। १० ।।
अत्थि इह भरहवासे पसिद्ध चंदावाइ पुरी नामे।
कणय-मणि-मंदिरेहिं पायारगं तुंग-सिहरेहिं ।। ११ ।।
दयासहिओ जहि लोए महाजणो वसइ जत्थ वरसिद्धा।
इंदपुरी सारिच्छा मढजिणवरविहं अच्छरियं ।। १२ ।।
सिरिवीरधवल नामे अत्थि निवो तत्थ केसरी सरिसो।
मायंग अरि-नरिंदाण जेण कुंभत्थलं दलिअं ।। १३ ।।

अंतिम अंश :—

जह सीलु धवलु पाविउ मलया सई पतिसंकडे पडिओ।
तिम हो भव्वयणं तुम्हं रक्खंतह सुह फलं होइ ।। ७९३ ।।
तह तवि महावलेणं सहिओ उवसग्ग-पामियओ मुक्खो।
तिम जे निचल ठाणं लहंति ते भविय संसिद्धि ।। ७९४ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जह तिवयं कीयं जेयइ-गुरुमाणि पाविओ मुक्खो।
जं कुणहि भविय ते पुणो लहंति सिववास निच्छयइओ ।। ७९५ ।।

पुव्वकहाअनुसरिरइयं हरीराज मलयावरचरियं।
हेमस्स छेउ सुक्खं हेमप्पह वीरजिणचंदो ।। ७९६ ।।

साटक

सोऊणं भवपुव्वदिक्खमहिया सुरेणं वीरेणे वा।
काऊणं कम्मखयं गया सिवपयं पच्छासु पउमा सुयु ।।

लद्धूणं मलयामहत्तरपयं जाइगयं सासिवं।
हेमप्पहरिया कियं पडलए सुक्खं चउहिंकारा ।। ७९७ ।।
संवत् १६२८ चेतवदि ९ सोम ।

पाण्डुलिपि-परिचय :—

पूना भण्डार की इस प्रति में कुल २८ पृष्ठ हैं। प्रत्येक पृष्ठ पर लगभग १४ पंक्तियां हैं एवं प्रत्येक पंक्ति में लगभग ४० शब्द हैं। प्रति की स्थितिअच्छी है। किन्तु भाषा की दृष्टि से प्रति काफी अशुद्ध है। संयुक्त अक्षरों को प्रायः सरल अक्षरों में ही लिखा गया है। यथा—अत्थि =अथि, तत्थ=तथ, जत्थ=जथ, हुत्तो=हुतो, पिच्छेइ=पिछेइ इत्यादि ।

इस पाण्डुलिपि में ग्रन्थ को चार भागों में विभक्त किया गया है। मलयसुन्दरी के जन्म-वर्णन तक की कथा १३० गाथाओं तक वर्णित है। इसे प्रथम स्तवक कहा गया है।[1] इसके बाद उसका यौवन-वर्णित किया गया है। आगे ३८३ गाथाओं तक मलयसुन्दरी के पाणिग्रहण का वर्णन है। इसे द्वितीय स्तवक कहा गया है। इसके आगे की गाथाओं में ५२७ गाथा तक महाबल एवं मलयसुन्दरी के अपने नगर एवं गृह में प्रवेश करने का वर्णन है। इसे तृतीय पडल कहा गया है। अन्तिम चतुर्थ स्तवक को चतुर्थ पडल कहा गया है, जो ७९७ गाथा पर समाप्त हुआ है।[2] इसमें मलया के शिवपद की प्राप्ति तक की कथा वर्णित है। इस तरह यह स्पष्ट है कि प्रस्तुत रचना मूल प्राकृत मलयसुंदरीचरियं का संक्षिप्त रूप है। क्योंकि मूल ग्रन्थ में लगभग १३०० प्राकृत गाथाएँ हैं जबकि इसमें कुल ७९७ गाथाएँ हैं।

प्रस्तुत पाण्डुलिपि की अंतिम प्रशस्ति में इसका रचना या लेखन समय सं० १६२८ चैत वदि ९ सोमवार दिया हुआ है। इससे यह पाण्डुलिपि विशेष महत्त्व की हो गयी है। यह अलग बात है कि सं० १६२८ को रचनाकाल माना जाय या लेखनकाल ? इसका समाधान ग्रन्थकार के परिचय पर विचार करने से हो सकेगा।

---

१. सुश्रावकश्रीहेमराजार्थे कविहरिराजविरचिते ज्ञानरत्नउपाख्याने मलयसुन्दरीचरिते मलयसुन्दरी-जन्मवर्णनो नाम प्रथमः स्तवकः ।

२. लद्धूण मलयामहत्तरपयं जाइगयं सा सिवं।
हेमप्पहरिया कियं पडलए सुक्खं चउहिंकारा ।।७९७।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कवि परिचय—

इस पाण्डुलिपि में, जो चार स्तवक या पडल हैं उनमें जो पुष्पिकाएँ दी गयी हैं वे बड़ी महत्त्वपूर्ण हैं। चारों में कवि ने अपने सम्बन्ध में कुछ नई बातें बतायी हैं। इस सामग्री के आधार पर प्राकृत मलयसुन्दरी के रचनाकार के सम्बन्ध में निम्न विवरण उपलब्ध होता है।

कवि नाम—ग्रन्थकार ने स्वयं को हरिराज, कवि हरिराज, हरि कवि आदि नाम से अभिहित किया है। प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय पडल की पुष्पिका लगभग समान है। यथा—

> सुश्रावकश्रीहेमराजार्थे कवि हरिराजविरचिते ज्ञानरत्नोपाख्याने मलयासुन्दरीचरिते **पाणिग्रहण** वण्णनो नाम **द्वीतो** स्तवकः समाप्तः।

इससे स्पष्ट है कि इस ग्रन्थ का कर्ता कवि हरिराज है। उसने प्रथम पुष्पिका में स्वयं को हरिराज[1] एवं तृतीय पडल में हरी कवि[2] भी कहा है। अन्तिम प्रशस्ति में **हरीराज** उच्चारण है।[3] अन्त में **हेमप्रभआर्य** नाम भी कवि के लिए या उसके गुरु के लिए प्रयुक्त लगता है—

> **हेमप्पहरिया कियं पडलए सुक्खं चउत्थिकारा। गाथा ७९७।** इसका अर्थ 'हेमप्रभ आर्य के द्वारा (अथवा के लिए) इस चतुर्थ पडल में सुख का वर्णन किया गया' यदि किया जाय तो व्याकरण की दृष्टि से 'हेमप्पहरिया कियं' शुद्ध पाठ नहीं प्रतीत होता है। अन्य प्रति के मिलने पर इसका निर्णय हो सकेगा।

मध्ययुगीन जैन साहित्य में हरिराज या हरि कवि नाम सुज्ञात नहीं रहा है। फिर भी जन ग्रन्थ भण्डारों की ग्रंथसूचियों में हरिकवि का कुछ विवरण प्राप्त है। १४ वीं शताब्दी में उत्पन्न वज्रसेन के शिष्य हरि मुनि ने 'कर्पूरप्रकर' नामक सुभाषित ग्रन्थ संस्कृत में प्रणीत किया है। इस हरिमुनि की अन्य रचना नेमचरित भी है।[4] इनके कर्पूरप्रकर की एक प्रति वि० सं० १६५० की उपलब्ध है।[5] इस हरिमुनि को 'हरिकवि' भी कहा गया है।[6] अतः यह स्वीकार किया जा सकता है कि कर्पूरप्रकर के हरिकवि ही इस मलयसुंदरीचरियं (प्राकृत) के हरिकवि या हरिराज हों। प्राकृत की यह रचना भी वि० सं० १६२८ में लिखी गयी है। अतः सम्भव है १६ वीं शताब्दी के आस-पास हरिकवि या हरिराज का समय रहा हो।

---

१. जे अत्थे हरिराइ गाहसरसे संखेइ वित्थारिओ। गा० १३१

२. आएसो कमलासिणी हरी कवि कीया कहा सुंदरी।
हेमस्सग्गह पुव्वदिसि हरे से संखेवि वित्थारिया॥ गा० ५२९

३. पुव्वकहा अनुसरि रइयं हरीराज मलयावरचरियं। गा० ७९६

४. देसाई, एम० डी०; जैनसाहित्यनो इतिहास, पृ० ३३६ टिप्पण ३६६

५. मुनि पुण्यविजय; कैटलाग आफ संस्कृत एण्ड प्राकृत मैनुस्क्रिप्ट, पार्ट IV (१९६८), पृ० १५६

६. मुनि पुण्यविजय; जैसलमेर कलेक्शन, अहमदाबाद (१९७२), पृ० २०२, २५९ एवं २६०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कविवंश परिवार—

मलयसुन्दरीचरियं की प्रथम पुष्पिका में कहा गया है कि 'श्रीमाल' के विशाल निर्मल कुल में श्री हंसराज के पुत्र (अंगत कवि) हरिराज ने सरस गाथाओं में विस्तार को संक्षेप में प्रस्तुत किया है–

श्री भाषस्य विशालवंशविमले श्री हंसराजांगजो।
जे अत्थं हरिराइ गाह-सरसे संखेइ वित्थारिओ।।

इससे ज्ञात होता है कि कवि हरिराज **श्रीमाल** वंशीय **हंसराज** के पुत्र थे। श्रीमाल कुल जैनपरम्परा में प्रसिद्ध कुल है। एक उल्लेख के अनुसार सं० १५५० में हंसराज नामक एक श्रावक हुए थे, जिनके भाई एकादे ने षडावश्यक अवचूरि की प्रति तैयार की थी।[१] अतः १५-१६ वीं शताब्दी में हंसराज नाम प्रचलित था।

कवि हरिराज ने कहा है कि ज्ञान-दर्शन-चारित्र के गुणों की निधि और शील के लिए विख्यात मलया का जो चरित है वह प्रथम जन्म लेने वाले (बड़े भाई) **हेम** के लिए सुखकारी हो।[२] आगे भी कवि ने सुश्रावक श्री **हेमराज** के लिए इस रचना को लिखने का तीन बार उल्लेख किया है—

सुश्रावक श्री हेमराजार्थं कवि हरिराज विरचिते...।

इससे स्पष्ट है कि हेमराज कवि के बड़े भाई ही नहीं अपितु इस रचना के निर्माण में प्रेरणादायक भी थे। इस तरह एक ही परिवार में हंसराज (पिता), हेमराज (भ्राता) एवं हरिराज (कवि) का होना स्वाभाविक लगता है। तीनों की नामराशि एक है और 'राज' शब्द प्रत्येक नाम के अन्त में जुड़ा हुआ है।

यह हेमराज नाम भी १५-१६ वीं शताब्दी में प्रचलित था। बृहदनगर (बडनगर) में देवराज, हेमराज एवं पाटसिंह तीनों भाई श्रीमंत एवं सुश्रावक थे। देवराज ने सोमसुन्दरसूरि को सूरिपद प्रदान किया था।[३] इस हेमराज और कवि के भ्राता सुश्रावक हेमराज में कोई सम्बन्ध बनता है या नहीं, यह अन्वेषणीय है। एक अन्य उल्लेख में पाटण के श्रीमाल कुल के हेमा का परिचय प्राप्त होता है, जिसका भाई देवो १५०८ में पातशाह महमूद के राज्य में राज्याधिकारी था।[४] यह हेमा 'हेमराज' से सम्बन्धित नहीं हो सकता। क्योंकि इसका कुल तो श्रीमाल ही है, लेकिन पिता का नाम हंसराज न होकर मदनदेवसिंह है।

---

१. जैनसाहित्यनो इतिहास, पैराग्राफ ६६७

२. णाण-दंसण-चरिणोगुणनिही सीलस्स विक्खातओ।
सो मलयाचरियं सुजम्म-पढमे हेमस्स सुक्खंकरो।। गा० १३१

३. जैनसाहित्यनो इतिहास, पृ० ४५३

४. वही, पृ० ५०३, टिप्पण संख्या ४७१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसके अतिरिक्त अंतिम प्रशस्ति में एक पंक्ति आयी है—**हेमस्स देउ सुक्खं, हेमप्पह वीरजिणचंदो**। गा. ७९६। वीर जिनेन्द्र हेम एवं हेमप्रभ के लिए सुख प्रदान करें। यहाँ प्रथम हेम को हेमराज सुश्रावक माना जा सकता है। किन्तु हेमप्रभ कौन है, यह विचारणीय है। अगली गाथा में इस हेमप्रभ का उल्लेख है।[1] कहीं यह कवि हरिराज के गुरु का नाम तो नहीं है ? अन्य पाठभेदों की प्राप्ति से ही इस पर कुछ कहा जा सकेगा।

रचना वैशिष्ट्य :—

मलयसुंदरीचरियं को कवि ने पूर्वकथा के अनुसार लिखने की बात कही है। किन्तु संकेत नहीं किया कि उन्होंने प्राकृत कथा का आधार लिया है या संस्कृत कथा का। चूंकि कवि हरिराज का समय सं० १६२८ के लगभग है अतः उन्होंने अब तक रचित मलयसुंदरीकथा सम्बन्धी प्राकृत एवं संस्कृत रचनाओं का अवश्य अवलोकन किया होगा। इस समय तक गुजराती में भी मलयसुंदरीरास शीर्षक रचनायें की जा चुकी थीं।[2] मलयसुंदरीकथा के परवर्ती किसी लेखक ने कवि हरिराज का उल्लेख या संकेत नहीं किया।[3] इससे लगता है कि प्रस्तुत रचना अधिक प्रसिद्ध नहीं थी। कवि ने इसका अपर नाम ज्ञानरत्नउपाख्यान' भी दिया है। जयतिलकसूरि (सं० १४५६) ने भी अपनी रचना का यह अपर नाम दिया है।[4]

इस कथा के नायक महाबल एवं नायिका मलयासुंदरी दोनों ही ज्ञान के रत्न थे। सम्भवतः इसी कारण उनके कथानक को 'ज्ञानरत्नोपाख्यान' नाम कवियों ने दिया है। जयतिलकसूरि एवं कवि हरिराज दोनों ने प्रारम्भ में रत्नत्रय एवं ज्ञान के महत्त्व को प्रकट किया है।

यथा—तृतीय लोचनं ज्ञानमदृष्टार्थप्रकाशनम्।
द्वितीयं च रवेर्बिम्बं दृष्टेतरतमोऽपहम्॥
ज्ञानं निष्कारणो बन्धुर्ज्ञानं मानं भवाम्बुधौ।
ज्ञानं प्रस्खलतां यष्टिर्ज्ञानं दीपस्तमोभरे॥

—जयतिलकसूरि, म० सुं० श्लोक १७-१८

लोयण तइयं नाणं नाणं दीवंतमोह-रसयलं।
नाणं तिहुयणसूरं नाणं अप्पाणं मल-दहणं॥

—हरिराज, म० सुं०च० गाथा ९

इससे प्रतीत होता है कि कवि हरिराज ने जयतिलकसूरि कृत मलयसुंदरीकथा शीर्षक संस्कृत रचना का अवलोकन कर इस प्राकृत कथा को संक्षेप में प्रस्तुत किया है। इन दोनों

१. हेमप्पहारि येण (कियं) पडलए सुक्खं चउहिकारा॥ गा० ७९७
२. सं० १५४३ में कवि उदयधर्म का 'मलयसुन्दरीरास' एवं सं० १५८० में चारुचन्द्र का 'महाबल मलयसुन्दरीरास' की कई प्रतियां प्राप्त हैं।
३. शर्मा, डा० ईश्वरानन्द; 'कवि जिनहर्षकृत मलयसुन्दरी चरित्र एक पर्यवेक्षण' नामक लेख, मरुधरकेशर अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० ३५२-३६१
४. जैसलमेरकलेक्शन—सं० मुनि पुण्यविजय, पृ० २००, रावीं पोथी में संख्या १७५ की प्रति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचनाओं के अन्तःसाक्ष्य से स्थिति अधिक स्पष्ट हो सकेगी कि इस प्राकृत रचना पर पूर्ववर्ती कवियों का कितना प्रभाव है।

कवि हरिराज के अनुसार उन्होंने सरस्वती का आदेश मानकर इस रचना का प्रणयन किया है और मलया सती का चरित्र अच्छे छन्दों (पद्यों) में प्राकृत में कहा गया है। शील के माहात्म्य को प्रकट करने के लिए, सज्जनों और प्रियजनों के संयोगजन्य आनन्द हेतु सुश्रावक श्री हेमराज के लिए उनके आग्रह पर अपनी बुद्धि से कवि ने इसकी रचना की यद्यपि कवि ने प्राकृत भाषा में कथा लिखने का संकल्प किया है।[1] किन्तु कई स्थानों पर उन्होंने संस्कृत के प्रयोग द्वारा कथानक को आगे बढ़ाया है। यथा—

विक्रीता भूरिद्रव्येण तेन सा पि महासती।
वस्त्ररंजनकारेण क्रीता निःकरुणेन हि ॥ ५५४ ॥[2]

एवं

रतिं न लभते क्वापि लुट्ठंती निसि भूतले।
संदिष्टो दुष्टसर्पेण निग्रतेन कुतोऽपि सा ॥ ६१३ ॥[3]

संस्कृत का प्रयोग सूक्तियों आदि के लिए भी किया गया है। यथा—

वरं मृत्यु न शीलस्य भंगो येनाक्षतं व्रतम्।
देवत्वं लभते वा नरकं च क्षतं व्रतः ॥ ४७८ ॥[4]

तथा—

सतीनां शीलविध्वंसः हतो लोकेऽत्र निश्चितम्।
अकीर्तिं कुरुते कामं तीव्रदुःखं ददाति च ॥ ५८० ॥[5]

ग्रन्थ की भाषा पर गुजराती आदि क्षेत्रीय भाषाओं का भी प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। कवि ने स्वयं ऐसे पद्यों को 'दोहडा' कहा है। महासती मलया के शील पर संकट आने के प्रसंग में कवि उस पर कुदृष्टि रखने वाले को लक्ष्य कर कहता है—

परि विय पिक्खिय जे पुरिससुरयसुहं इच्छंति।
ते रावण दुक्खं निव फल पचक्ख लहंति ॥ ५८३ ॥

---

१. भदंतो मलयासईय चरित्रं सुछंद-पाइक्कए।
अप्पाणे बुहीमाण विय पडलं योहावणमेवाणिय ॥
श्री हेमराह-कारणै हरिकवि सीलस्स माहप्पड,
चाहे सज्जण-संगमे पियजणेमेलं च आणंदणे ॥३८५॥

२. मलयसुंदरीचरियं (पूना पाण्डुलिपि), पत्र पृष्ठ ३९

३. वही, पत्र पृष्ठ ४४

४. वही, पत्र पृष्ठ ४२

५. वही,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जब मलया और महाबल का बहुत दिनों के बाद संयोग हुआ तो उन्हें अतिशय आनन्द हुआ। कवि कहता है कि प्रियजनों के मिलाप का आनन्द जिनेन्द्र के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं जानता —

वल्लह जणमेलावउ जं सुह हिमडइ होइ।
तिहि पमाणु जिणवर कहइ अवर न जाणइ कोइ ॥ ६५४ ॥[1]

मलयसुंदरीचरियं की प्राकृत की तीन पाण्डुलिपियों का परिचय हमने जो पहले लेख में दिया था, उससे पूना की यह प्रति भिन्न है। बम्बई, आगरा, लींबड़ी, जैसलमेर और सूरत के ग्रन्थभण्डारों में इस कथा की जिस प्राकृत पाण्डुलिपियों के होने का संकेत है[2], वे अभी प्राप्त नहीं की जा सकी हैं। उन्हें देखने पर ही ज्ञात होगा कि पूना की प्रति से उनका कोई सम्बन्ध है या नहीं। यदि पूना की यह प्रति अकेली भी हो तो भी इसका कई दृष्टियों से महत्त्व है। मलयसुंदरीचरियं के सम्पादन के साथ इसे भी प्रकाश में लाने का प्रयत्न हम करेंगे।

विभागाध्यक्ष
जैनविद्या एवं प्राकृत विभाग
सुखाड़िया विश्वविद्यालय
उदयपुर (राज०)

१. मलयसुंदरीचरियं (पूना पाण्डुलिपि) पत्र पृष्ठ ४४
२. जिनरत्नकोश, पृ० ३०२ एवं ३०५ आदि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org